

सनातन शब्द

& dr aasheish jain acharya

- ❖ परिग्रह-विहीनता । यह अहिंसा आदि पांच सनातन धर्मों/महाव्रतों में पांचवां धर्म/महाव्रत है । इसमें शरीर से भी ममत्व नहीं रहता । *महापुराण 5.23, 34, 168-173*
- ❖ (1) राजा वसुदेव और उसकी रानी बालचंद्रा का छोटा पुत्र, वज्रदंष्ट का अनुज । *हरिवंशपुराण - 48.65*
- ❖ (2) एक मुनि । ये पुंडरीकिणी नगरी में आये थे । वहाँ मणिकुंडल विद्याधर को इन्होंने सनातन धर्म का स्वरूप बताया था । *महापुराण 62.362-363*
- ❖ ज्ञानार्णव में सनातन शब्द -

यो विशुद्ध : प्रसिद्धात्मा परं ज्योतिः सनातनः।

सोऽहं तस्मात्प्रपश्यामि स्वस्मिन्नात्मानमच्युतम्॥1529॥ ज्ञानार्णव-1529

भावार्थ - निर्मल है और प्रसिद्ध है आत्मस्वरूप जिसका, ऐसा परमज्योति सनातन जो सुनने में आता है ऐसा मैं आत्मा हूँ, इस कारण मैं अपने में ही अविनाशी परमात्मतत्त्व को देखता हूँ। क्या हूँ, जरा सम्मुख होने का और विमुख होने का इतना बड़ा भारी अंतर होता है कि एक ओर तो रहती है शांति और एक ओर रहती है अशांति। यह जीव अब तक बाह्य पदार्थों की ओर ही रहा। पंचेंद्रिय के विषयभूत स्पर्श रस गंध रूप शब्द इनकी ओर ही उपयोग रहा और इसी कारण इसके बड़ी वेग की तृष्णा उत्पन्न हुई और उस तृष्णा के वेग में यह अपने आपको सम्हाल न सका और बैचेन रहा। इस जीव ने अब तक भी अपने आपमें बसे हुए एकत्व विभक्त समयसार विशुद्ध चैतन्य ज्ञानानंदमात्र अपने आपको नहीं देखा, इसी के कारण यह अब तक बैचेन रहा। लेकिन यह समय बड़े चेतने का है। मनुष्य जन्म पाया, श्रावककुल पाया, इतना धार्मिक वातावरण पाया, बड़े-बड़े तत्त्व की बात जो ग्रंथों में भरी हुई हैं उनके सुनने, जानने और निर्णय करने की शक्ति पायी, इससे बढ़कर और समागम क्या हो सकता है? इस भव का जैन शासन कितना उत्कृष्ट है लेकिन इस उत्कृष्ट साधन को भी इन्हीं विषयों में खो दिया जाता। इससे बड़ी गलती और क्या हो सकती है? मैं विशुद्धपरम ज्योतिर्मय आत्मतत्त्व हूँ यों यत्न करें और अपने आपमें इस परमात्मस्वरूप को देखें।

❖ वर्णीजी-प्रवचन:समाधितंत्र - श्लोक 57

पश्येन्निरंतरं देहमात्मनोऽनात्मचेतसा ।

अपरात्मधियाऽन्येषामात्मतत्त्वं व्यवस्थितः ॥57॥

स्वपरविवेचक दर्शन – अपने आपको समाधिभाव ही परमशरण है-ऐसी प्रतीति रखने वाला अंतस्तत्त्व का रुचिया ज्ञानीसंत अपने आपको प्रतिबोध रहा है और ऐसे ही भव्य जीवों को भी यह प्रतिबोधन कर रहा है कि हे कल्याणार्थी आत्मन् ! तू देखता तो है देह को, चाहे अपने देह को देख रहा हो, चाहे पर के देह को देख रहा हो, पर इस देखने के प्रसंग में तू इस तरह से जान कि यह जो मेरा देह है ऐसा यह वास्तव में मैं नहीं हूं, अर्थात् यह देह मैं नहीं हूं और इसी तरह से जब तू दूसरे देहों को देखता तब भी यह समझ कि ये अन्य देह भी ये अन्य आत्मा नहीं । जैसे इस देह में रहता हुआ भी यह देह मैं नहीं हूं इस देह से मैं न्यारा हूं, इसी तरह से जब तू दूसरे देहों को देख तब भी यह समझ कि इन अन्य देहों में रहते हुए भी ये देह भी अन्य आत्मा नहीं है । ये दूसरे जीव भी इन देहों से न्यारे हैं । ऐसा देखने से तू आत्मतत्त्व में व्यवस्थित हो जायेगा ।

निःसंकट आत्मस्वरूप – भैया ! इस लोक में संकट एक नहीं है । हम आप सबकी बात कही जा रही है । जो संज्ञी जीव होते हैं, जिनके मन का संयोग है उन जीवों की बात कह रहे हैं । हम और आप को संकट एक नहीं है किंतु जब हम अपने शील को खोकर परवस्तु को अपनाते हैं, उन्हें अपनी मानते हैं बस वहीं इतनी कल्पना में संकटों का जाल बिछ जाता है । क्या है संकट इस जीव को ? मानते जावो संकट और अपने सामने धरते जावो । कोई घर का इष्ट पुरुष मर गया है, लो इस संकट को भी सामने रख लो कुछ धन नष्ट हो गया है, चोर धन चुरा ले गये हैं, इन संकटों को भी सामने रख लो, नुकसान हो गया है, टोटा हो गया है, लोगों ने अपमान कर दिया, गाली दे दिया, इन सारे संकटों को अपने सामने रख लो और अब जरा धीरे से अपने आपके प्रभु से मिलकर यह भी दर्शन करलो कि यह मैं आत्मा आकाश की तरह निर्मल अमूर्त किंतु ज्ञानानंदमात्र सबसे न्यारा हूं । यह मैं आत्मा तो उतना ही हूं जितना कि मेरा स्वरूप है । इतना ही मैं हूं और इतना ही रहूंगा । जरा अपने आपके इस प्रभुताई के दर्शन कर लो, वे सारे संकट जो बहुत दिनों में इकट्ठे हो पाये थे वे सब एक ही साथ दूर हो जाया करते हैं ।

सुगम स्वाधीन अपूर्व साहस की आवश्यकता – भैया ! संकट और विश्राम की पद्धति और है ही क्या ? केवल विचारों की ही तो बात है, एक अंतरंग साहस की ही तो बात है । एक यों ही थोड़ी पुरानी घटना सुनते हैं कि बुंदेलखंड में किसी राज्य में राजा के यहां एक पहलवान आया । जो सब जगह

कुशितयां खेलता हुआ, जीतता हुआ आया और राजा से बोला कि आपके सुभटों में से यदि कोई पहलवान हो तो हम कुशती करने आये हैं। सभी लोग बैठे थे। किसी सुभट को हिम्मत न हुई तो एक दुबला पतला गांव का आदमी खड़ा होकर बोला, महाराज हम इससे लड़ेंगे। सब लोग देखकर आश्चर्य करने लगे कि एक धक्के में जो गिर पड़ेगा ऐसा दुर्बल यह कह रहा है कि मैं लड़ूंगा। हां महाराज मैं लड़ूंगा, संदेह क्यों करते हो? अच्छा भाई, नामकरण हो गया, यह कुशती खेलेगा। तो वह दुबला पतला बोलता है कि मैं इस तरह न लड़ूंगा। 15 दिन की इसे मोहलत दे दो, नहीं तो यह हार जायेगा तो कहेगा कि हम थके थे सो हार गये। पहिला रोब तो यों जमाया। 15 दिन की मोहलत उसे दे ही गई। तो अब जब समय आया तो कहा ऐसे न लड़ेंगे, पहिले यह अपनी चेत करे, नहीं तो बहना बनायेगा कि हमारी असावधानी में ऐसा हो गया कि हार गये। और भी एक दो बातें ऐसी कहीं कि उसके दिल को आधा बना दिया और फिर थोड़ी ही देर में अपने दाहिने हाथ को पहलवान की आंखों के सामने से निकाल कर उसके पैर पकड़ कर उसे पछाड़ दिया। साहस की ही तो बात है। यहां हम आप दुःखी हो रहे हैं रात दिन, साहस कर लें तो फिर यहां कोई दुःखी ही नहीं है।

संकटहारी निःसंकट साहस – अच्छा, संकट मेटने के लिये क्या साहस कर लें? सच्ची बात मान लें, कोई लाग लपेट नहीं रखना है, कोई विडंबना वाली बात नहीं करना है किंतु जो यथार्थ बात हो उसे मानें। मैं ज्ञानानंदस्वरूप हूं, केवल जाननस्वरूप हूं, जितने पृथक् मुझसे अन्य सब जीव हैं उतने ही पृथक् घर में आये हुए ये दो चार जीव हैं। जितने पृथक् जगत् के और सब धन वैभव हैं उतना ही पृथक् जिसको अपना मान रक्खा है वह सब वैभव है। ऐसी एक हिम्मत बनानी है, इसी से सुख है, आनंद है। देख जब तू दूसरे देहों को देख ले तब इस तरह से देख कि ये सब देह जुदे हैं और इनमें बसने वाला आत्मा न्यारा है। जैसे कोई मकान को यह कह दे कि यह सेठ जी खड़े हैं तो यह कितनी भद्दी बात है, ऐसे ही इस देह को ही हम यह कह दें कि यह मैं हूं व ये दूसरे आत्मा हैं, यह भी उतनी ही भद्दी बात है। घर में रहने वाला सेठ जैसे घर से जुदा है और कोई घर को निरखकर कहे कि यह सेठ जी खड़े हैं तो कितनी अपमान की बात है? ऐसे ही इस देह को देखकर यह क्यों कह रहे हो कि यह मैं बैठा हूं, यह मैं खड़ा हूं। जैसे घर में रहने वाला सेठ घर से न्यारा है ऐसे ही देह में रहने वाला यह मैं आत्मा देह से न्यारा हूं।

देह और आत्मा की परस्पर विलक्षणता – भैया! इस देह के जितने भी वाचक शब्द हैं उन शब्दों का अर्थ देखो तो उससे ही निःसारता मालूम होती है। देह उसे कहते हैं जो ढेर रूप बन जाय। शीर्यते इति शरीरं। जो शीर्ण हो, गल जाय उसे शरीर कहते हैं। संचीयते इति कायः। जो संचित किया जाय, खुद यों नहीं है उसे काय कहते हैं। तो समझ लीजिए कि ये सब मायामय है, ये सब शुरू से भी कुछ नहीं है,

ये कोई परिपूर्ण स्वतंत्र तत्त्व नहीं हैं, किंतु यह मैं समस्त विश्व का जाननहार ऐसा उत्कृष्ट व्यवस्थापक अनंत एश्वर्यसंपन्न आत्मा हूँ।

अंतस्तत्त्व की झलक का आनंद – इस आत्मा के अंतःस्वरूप का वर्णन किया जाना बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी कठिन पड़ता है। हम आप सरीखे मंद बुद्धि वाले उनके विषय में क्या कह सकें ? केवल एक दिशा का अवलोकन जरूर किया जा सकता है। चाहे हम वर्णन न कर सकें किंतु इसका दर्शन हो जाय तो वर्णन करने वाला और वर्णन न कर सकने वाला यह मैं दोनों को ही स्वाद समान ही आयेगा। कोई भोजन में क्या-क्या बना है, कैसा पकाया है आदि व्यवस्था का वर्णन न कर सके और भोजन करे तो उसे भी वह स्वाद आयेगा जो भोजन का बहुत-बहुत वर्णन करके स्वाद ले रहा है। तो जिसके एक दिशा के अवलोकन में भी अतुल आनंद भरा है ऐसा यह मैं आत्मतत्त्व इस देहरूप नहीं, किंतु देह से जुदा हूँ।

दृष्टांत में मजहबी नामों में हितशिक्षण – इस आत्मा को कितने ही शब्दों से कहो वे सब आत्मा की महनीयता बताते हैं। जैसे कि धर्म के जितने भी नाम हैं वे सब नाम धर्म की महनीयता बताते हैं। जैसे शैव जो शिव स्वरूप हो उसे शैव कहते हैं। शिव का अर्थ है कल्याण। जो कल्याणस्वरूप को अनुभवे, जाने उसे शैव कहते हैं। इस शब्द ने भी परमशरणभूत निजअंतस्तत्त्व का संकेत किया। वैष्णव जो विष्णु स्वरूप को माने उसे वैष्णव कहते हैं। विष्णु का अर्थ है जो सर्वत्र व्यापक रहे। व्याप्नोती इत्येवं शीलः विष्णुः। खूब छानो, खूब देखो ऐसा कौन सा तत्त्व है जो सब जगह व्याप कर रह सकता है ? वह तत्त्व है ज्ञान। इस समय आपका ज्ञान कहां तक फैला होगा ? यदि बंबई वगैरह की चिंता हो गई होगी तो बंबई तक आपका ज्ञान फैल गया और इसी आंगन में आपका चित्त लगा है तो इतने आंगन में ही आपका व औरों का भी ज्ञान फैल गया। कहीं किसी ज्ञान से किसी ज्ञान की टक्कर तो नहीं लग रही है ? यह ज्ञान स्वभावतः असीम है। इस ही ज्ञानस्वरूप का नाम विष्णु है, इसकी जो श्रद्धा करे उसे ही वैष्णव कहते हैं।

ईसाई – जो ईश की भक्ति करे, ऐसे लोग ईसाई कहलाते हैं या ईसाई मजहब को कहते हैं। ईश नाम समर्थ का है। जो समर्थ हो, प्रभु हो, गुणविकास में परिपूर्ण हो, उसकी भक्ति करने वाले ईशाई कहलाते हैं। शब्दों में देखो तो एक उपदेश की दिशा मिलती है। यह बात दूसरी है कि अपने शब्दों के मुताबिक कोई आचरण रखे अथवा न रखे। मुसलमान मायने मुसले ईमान अथार्त् जो अपनी सच्चाई पर कायम रहे, वह है मुसलमान।

सच्चाई क्या है ? जो वस्तु का स्वरूप है, उस सही स्वरूप पर कायम रहे, विपरीत आशय न बनाये । देखो शब्दों से कितनी शिक्षा मिल रही है ? जैन—जो रागादिक शत्रुओं को जीते, रागद्वेष की स्फूर्णा न होने दे, उसे जिन कहते हैं और जिनोपदेश को जो माने उसे जैन कहते हैं । **सनातन कहते हैं अनादिअनंत तत्त्व को, जिसका न कभी आदि है और न अंत है । ऐसा तत्त्व कौन है ? हम आप सभी का स्वभाव दृष्टि से ही निरखा गया अंतस्तत्त्व यह सनातन है । इस सनातन तत्त्व की दृष्टि हो तो उसे कहते हैं सनातनी । जैसे मजहबों के शब्दों में एक एक शिक्षा भरी हुई है । यों ही आत्मस्वभाव के वाचक जितने शब्द हैं, उन शब्दों में भी शिक्षा बसी हुई है ।**

आत्मा के अर्थ में हितशिक्षण — इस आत्मा का नाम है आत्मा । “अतति सततं गच्छति जानति इति आत्मा” । जो निरंतर गमन करे, उसे आत्मा कहते हैं । गमन का अर्थ जानना है, क्योंकि सबसे तेज गमन करने वाला ज्ञान है । ज्ञान की गति सबसे तेज होती है । जो निरंतर जाने, उसका नाम आत्मा है । इससे यह जानों कि इस आत्मा का स्वभाव निरंतर जानते रहने का है, यही इसका शील है । जैसे उपदेश हो कि अपने शील की रक्षा करो । तो काहे की रक्षा करोगे ? इस ज्ञातादृष्टापन की रक्षा करो । तुम समस्त पदार्थों के मात्र ज्ञातादृष्टा रहो । इस शील में रहने वाले पुरुष को कभी संकट आ ही नहीं सकता । इस परमार्थशील से चिगे और परपदार्थों में यह मैं हूं, यह मेरा है—ऐसी प्रतीति रखे तो वहां संकट अपनी उदंडता के कारण अपने आप ही आएगा ।

ज्ञानयोग — भैया ! ऐसे दुर्लभ मनुष्यभव को पाकर बुद्धिमानी का काम यह होगा कि अपने आपमें गुप्त ही रहकर भीतर में इस धर्म की कमाई कर लो अर्थात् यथार्थ ज्ञान और यथार्थ विश्वास की दृढ़ता बना लो । जब आखिर कुछ साथ रहना नहीं है, सब कुछ विनष्ट होगा, सब कुछ छोड़ कर जाना होगा, तब हम अपने जीवन में ही अपने ज्ञानबल से उन्हें छूटा हुआ जान लें तो अभी ही सुखी हो जाएँ । अन्यथा ऐसी हालत में समझो कि जैसे लोग अपने बाप को जिंदा रहने तक तो सुख से नहीं रहने देते और बाप मर जाए तो हर साल 25, 30 रुपए खर्च करते हैं । कहीं गया जी, कहीं और कहीं । 10, 20 और 50 रुपये खर्च करके श्राद्ध करते हैं । अरे, अब जितना खर्च कर रहे हो, उसका थोड़ा भी कम करके जिंदगी में खर्च किया होता या प्रेम से बोला होता तो यह उस श्राद्ध की अपेक्षा भला था । मरे के बाद खबर लेने की अपेक्षा जिंदगी में कुछ खबर लेना, यह ज्यादा अच्छा था ।

ऐसे ही समझो कि परवश होकर या मरने के कारण या पापोदय के कारण आपका यह धन दौलत परिग्रह छूटता है तो उससे अच्छा यह है कि अपनी राजी खुशी, अपनी प्रसन्नता के साथ स्ववश होकर जीवन में उसे अपने से भिन्न मान लें ।

समागम को भिन्न मान लेने की पहिचान – आपने उसे वास्तव में भिन्न माना, इसकी पहिचान यह है कि योग्य काम देखकर अन्य को दीन दुःखी देखकर या कोई धर्मप्रभावना की बात निरखकर उस धन के खर्च करने में रंच भी संकोच नहीं होना – ऐसी उदारता ही इसकी पहिचान है कि अपने जीते जी जीवन में समस्त अन्य पदार्थों को अपने से न्यारा समझा है। संकट अन्यत्र कहां हैं। जैसे लोग कहते हैं कि गरीब हो या धनी हो, सब अपने अपने घर के बादशाह हैं। साधारण रिक्शा चलाने वाले भी अपनी गद्दी पर बादशाह हैं। जैसे इस सारे लोक में यह बात कहते हैं कि ऐसे ही स्वरूप में यह बात पड़ी हुई है कि प्रत्येक जीव अपने आपमें अपने आपका बादशाह है, सर्वेसर्वा है। अरे निज सहजस्वभाव को निरखो तो वहां आनंद ही आनंद है।

परिजनों के साथ वास्तविक मित्रता – भैया ! परिवार का संग मिला है तो वास्तविक मित्रता यह होगी कि स्वयं ज्ञानी अधिक विरक्त बनें, ज्ञान और वैराग्य के मार्ग पर चलकर जीवन सफल करें और ऐसे ही मार्ग पर दूसरों को लगावें, तब तो सच्ची मित्रता है अन्यथा विषयकषायों के तो ये जीव प्रकृत्या रुचिया हैं ही, इनका विषयकषायों में चित्त सुगमता से लग जाता है और फिर हमने अनेक विषयकषायों के पोषने की बात कह दी या साधन में जुटा दिया। एक तो वह स्वयं गड्ढे में गिर रहा था, दूसरे अपन ने उसे धक्का लगा दिया तो यह बैर का ही काम किया, मित्रता का काम नहीं किया, परंतु वाह रे मोह ! बैर के काम को तू मित्रता की बात समझता है और वास्तविक मित्रता की बात को तू गैर बात समझता है।

प्राकरणिक शांतिशिक्षण का उपसंहार – कल्याणार्थी पुरुष अपने देह को यों निरखे कि यह मैं नहीं हूं और दूसरे के देह को यह निरखे कि यह पर का आत्मा भी इन देहोंरूप नहीं है। यों निज और पर के यथार्थस्वरूप को देखो तो वह इस आत्मतत्त्व में व्यवस्थित होकर अपने आपमें शांति प्राप्त कर सकता है। शांति अन्यत्र कहीं भी तो नहीं है। शांति का तो स्वरूप ही यह आत्मा है। इस ओर दृष्टि देने मात्र से ही सारे संकट समाप्त हो जाते हैं।

❖ सूत्रकृतांग में “सणातण”

सूत्रकृतांग सूत्रमें एक महत्वपूर्ण गाथा आती है—

“पुरिसं अव्वत्तरुवं महंतं सणातणं अव्वयं अक्खयं...”

इसका भावार्थ है— यह आत्मा अव्यक्त स्वरूप, महान, सनातन, अव्यय और अक्षय है। आगे कहा गया है कि यह आत्मा सभी जीवों में विद्यमान है। उपलब्ध जैन आगम-पाठ और टीका में “सणातणं” का अर्थ नित्य/शाश्वत किया गया है।

❖ कुन्दकुन्द परम्परा में “सनातन” का भाव

आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार आदि में “सनातन” के अर्थ को व्यक्त करने के लिए “अणादिणिधण” (अनादिनिधन) जैसे शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं—अर्थात् जिसका न आदि है, न अन्त। आधुनिक जैन व्याख्याकार भी इसे सनातन के दार्शनिक अर्थ से जोड़ते हैं।

समयसार की व्याख्या में आत्मतत्त्व को “सनातन शुद्ध आत्मतत्त्व” कहा गया है तथा अन्यत्र जीव के द्रव्यरूप शुद्धत्व को सनातन बताया गया है।

❖ मतिज्ञान और श्रुतज्ञान

मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमेन्मात्रं सनातनम्।

स्याद्वा तरतमैर्भावैर्यथाहेतुपलब्धिं सात्॥१०१४॥ पंचाध्यायी

मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान ये दोनों छद्मस्थ अवस्था में सदा रहते हैं और जैसी कारण सामग्री मिलती है उसके अनुसार हीनाधिक हुआ करते हैं।

- तदहर्जस्तनेहातो रक्षोडष्टर्भवस्मृतेः।

भूतानन्वयनाजीवः प्रकृतिशः सनातनः॥ २९॥ उपासकाध्ययन- आचार्यश्री सोमदेवसूरि

भावार्थ- उसी दिन का पैदा हुआ बच्चा माता के स्तनों को पीने की चेष्टा करता है, राक्षस वगैरह देखे जाते हैं, किसी किसी को पूर्व जन्म का स्मरण भी हो जाता है तथा आत्मा में पंच भूतों का कोई भी धर्म नहीं पाया जाता है। इस बातों से प्रकृति का ज्ञाता जीव सनातन सिद्ध होता है।

❖ उत्तरपुराण में वर्णित सनातन शब्द -

१. अथानन्तर कोई एक विद्याधर युद्ध करनेवाले दोनों भाइयोंके बीच प्रवेश कर कहने लगा कि तुम दोनों व्यर्थ ही क्यों युद्ध करते हो ? यह तो तुम्हारी छोटी बहिन है। उसके वचन सुनकर दोनों कुमारोंने आश्चर्यके साथ पूछा कि यह कैसे ? उत्तरमें पुष्पलावती नामका देश है। उसमें विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी पर आदित्याभ नामका नगर है। उसमें सुकुण्डली नामका विद्याधर राज्य करता है।

सुकुण्डलीकी स्त्रीका नाम मित्रसेना है। मैं उन दोनोंका मणिकुण्डल नामका पुत्र हूँ। मैं किसी समय पुण्डरीकिनी नगरी गया था, वहाँ अमितप्रभ जिनेन्द्रसे **सनातनधर्म** का स्वरूप सुनकर मैंने अपने पूर्वभव पूछे। उत्तरमें वे कहने लगे ॥361-363॥

2. वे उसी समय संयमके कारण उत्पन्न हुए मनः पर्यायज्ञान से देदीप्यमान हो उठे। **‘यह सनातन मार्ग है’** ऐसा विचार कर सम्यग्ज्ञान से प्रेरित महामुनि मल्लिनाथ भगवान् पारणा के दिन मिथिलापुरी में प्रविष्ट हुए। वहाँ सुवर्ण के समान कान्तिवाले नन्दिषेण नाम के राजा उन्हें प्रासुक आहार देकर शुभ पंचाश्चर्य प्राप्त किये ॥49-50॥

3. भगवान् मुनिसुव्रतनाथ इस भव से पूर्व तीसरे भवमें इसी भरतक्षेत्रके अंग देशके चम्पापुर नगरमें हरिवर्मा नामके राजा थे। किसी एक दिन वहाँके उद्यानमें अनन्तवीर्य नामके निर्ग्रन्थ मुनिराज पधारे। उनकी वन्दना करनेकी इच्छा से राजा हरिवर्मा अपने समस्त परिवारके साथ पूजा की सामग्री लेकर उनके पास गये। वहाँ उन्होंने उक्त मुनिराज की तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, तीन वार पूजा की, तीनवार वन्दनाकी और तदनन्तर **सनातन धर्मका स्वरूप** पूछा ॥2-4॥

4. इसलिए तुम लोग भय छोड़कर जो पर्वत कह रहा है वही करो, वही स्वर्ग का साधन है। इस प्रकार हिंसानन्दी और रौद्र ध्यान के द्वारा राजा वसु ने नरकायु का बन्ध कर लिया तथा असत्य भाषण के पाप और लोक-निन्दा से नहीं डरने वाले राजा वसु ने उक्त वचन कहे। राजा वसु की यह बात सुनकर नारद और तपस्वी कहने लगे कि आश्चर्य है कि राजा के मुख से ऐसे भयंकर शब्द निकल रहे हैं, इसका कोई विषम कारण अवश्य है। उसी समय आकाश गरजने लगा, नदियों का प्रवाह उलटा बहने लगा, तालाब शीघ्र ही सूख गये, लगातार रक्त की वर्षा होने लगी, सूर्य की किरणें फीकी पड़ गई, समस्त दिशाएँ मलिन हो गई, प्राणी भय से विह्वल होकर काँपने लगे, बड़े जोर का शब्द करती हुई पृथ्वी फटकर दो टूक हो गई और राजा वसु का सिंहासन उस महागर्त में निमग्न हो गया। यह देख आकाश मार्ग में खड़े हुए देव और विद्याधर कहने लगे कि हे बुद्धिमान् राजा वसु! **सनातन मार्ग का उल्लंघन कर धर्म का विध्वंस करनेवाले मार्ग का निरूपण मत करो** ॥428-434॥

❖ उत्तरपुराण- आचार्यश्री गुणभद्र स्वामी – पर्व 67

गत्वा लमपरिवारेण ससपर्यः परीय तम्। त्रिः समभ्यर्च्य वन्दित्वा प्राक्षीत् धर्मं सनातनम् ॥४॥

❖ पद्मपुराण में –

1. अथानन्तर—अमररक्ष और भानुरक्ष दोनों भाई, पुत्रों को राज्य देकर दीक्षा को प्राप्त हुए और महामत्सरूपी धन के धारक हो सनातन सिद्ध पद को प्राप्त हुए ॥३७६॥
2. यह आश्चर्य देखकर विद्याधर विद्युलेश ने मुनिराज से पूछा कि हे देव! मैं क्या करूँ? मेरा क्या कर्तव्य है? इसके उत्तर में मुनिराज ने निर्मापित हितकारी वचन कहे कि चार ज्ञान के धारी हमारे गुरु पास ही विद्यमान हैं सो हम लोग उन्हीं के समीप चलें, यही सनातन धर्म है ॥२६२—२६३॥
3. हे पुत्रों! विद्या सिद्ध की जाती है आत्मीयजनों की समृद्धि के लिए, सो उन आत्मीयजनों की अपेक्षा माता-पिता श्रेष्ठ हैं और माता-पिता की अपेक्षा बहन श्रेष्ठ है यही सनातन व्यवस्था है ॥३०४॥
4. यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुख को देने वाली है। इन्द्रियरूपी वणराग से पीड़ित तथा मोह से अंधे मनुष्य इसे नहीं देख सकते हैं ॥१२॥
5. तदनंतर जिसका वैर शांत हो गया था, जिसके नेत्रों से दुर्दिन की भाँति अविरल अश्रुओं की वर्षा हो रही थी तथा जो पिता के मरण-संबंधी शोक से पीड़ित थी ऐसी उस लंकासुंदरी से हनुमान ने कहा ॥६२॥ कि हे सौम्यमुखि! रोओ मत। हे भामिनि! शोक करना व्यर्थ है। सनातन क्षत्रिय धर्म की तो यही रीति है ॥६३॥
6. सनातन, निराबाध तथा उत्तम अतिशय से युक्त सुख को देने वाले जिनधर्म में अवगाहन करने की जो तुम्हारी भावना है वह बहुत उत्तम है ॥२२॥

❖ आदिपुराण में —

1. वह पर्वत हमेशा विद्याधरों के द्वारा आराध्य हैं—विद्याधर उसकी सेवा करते हैं, स्वयं निर्मल रूप हैं, सनातन हैं—अनादि से चला आया है और सुनिश्चित प्रमाण है—लम्बाई-चौड़ाई आदि के निश्चित प्रमाण से सहित है, इसलिए ठीक जैनागम की स्थिति को धारण करता है, क्योंकि जैनागम भी विद्याधरों के द्वारा सम्यग्ज्ञान के धारक विद्वान पुरुषों के द्वारा आराध्य हैं—बड़े-बड़े विद्वान उसका ध्यान, अध्ययन आदि करते हैं, निर्मलरूप हैं—पूर्व में विरोध आदि दोषों से रहित है, सनातन है—द्रव्य दृष्टि की अपेक्षा अनादि से चला आया है और सुनिश्चित प्रमाण है—युक्तिसिद्ध प्रत्यक्ष परोक्षप्रमाणों से प्रसिद्ध है ॥८॥
2. अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह का त्याग करना ये सब सनातन (अनादिकाल से चले आये) धर्म कहलाते हैं ॥२३॥

3. अथानन्तर अन्नादि के नष्ट होने से जिसे अनेक प्रकार के भय उत्पन्न हो रहे हैं और जो सबको शरण देने वाले भगवान् की शरण को प्राप्त हुई है ऐसी प्रजा सनातन-भगवान् के समीप जाकर इस प्रकार निवेदन करने लगी कि ॥३५॥
4. उस समय संसार में जितने पापरहित आजीविका के उपाय थे वे सब भगवान् वृषभदेव की सम्मति में प्रवृत्त हुए थे सो ठीक है क्योंकि सनातन ब्रह्मा भगवान् वृषभदेव ही हैं ॥८८॥
5. कितने ही लोग ऐसे उचित वचन कह रहे थे कि सनातन-भगवान् केवल हम लोगों पर अनुग्रह करने के लिए ही वनप्रदेश से वापस लौटे हैं ॥४६॥
6. लीलापूर्वक पैर रखते हुए, और मनुष्यों से भरे हुए नगर को शून्य वन के समान जानने हुए निराकुल होकर चान्द्रीचन्द्रया का आश्रय लेकर विहार कर रहे थे अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा धनवान और निर्धन-सभी लोगों के घर पर अपनी चाँदनी फैलाता है उसी प्रकार भगवान् भी राग-द्वेष से रहित होकर निर्धन और धनवान सभी लोगों के घर आहार लेने के लिए जाते थे। इस प्रकार प्रत्येक घर में यथायोग्य प्रवेश करते हुए भगवान् राजमन्दिर में प्रवेश करने के लिए उसके सम्मुख गये सो आचार्य कहते हैं कि रागद्वेषरहित हो समतावृत्ति धारण करना ही सनातन-सर्वश्रेष्ठ प्राचीन धर्म है ॥६८॥
7. इस संसार में जो कुछ धर्म-सृष्टि थी सनातन भगवान् वृषभदेव ने वह सब उदाहरण स्वरूप स्वयं धारण कर इस युग के आदि में प्रसिद्ध की थी। भावार्थ-भगवान् धार्मिक कार्यों का स्वयं पालन करके ही दूसरों के लिए उपदेश देते थे ॥९६॥
8. इसी प्रकार वे समस्त संसार में व्याप्त होने से विष्णु, कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने से 'विजिष्णु', शान्ति करने से 'शंकर', सब जीवों को अभय देने से 'अभयंकर', आनन्दरूप होने से 'शिव', आदि-अन्तरहित होने के कारण 'सनातन', कृतकृत्य होने के कारण सिद्ध, केवलज्ञानरूप होने से 'ज्योति', अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मी से सहित होने के कारण 'परम' और अविनाशी होने से 'अक्षर' कहलाते हैं ॥२६॥
9. इस प्रकार सनातन भगवान् जिनेन्द्रदेव के चौंसठ चमर कहे गये हैं और वे ही चमर चक्रवर्ती से लेकर राजा पर्यन्त आधे-आधे होते हैं अर्थात् चक्रवर्ती के बत्तीस, अर्धचक्रवर्ती के सोलह, मण्डलेश्वर के आठ, अर्धमण्डलेश्वर के चार, महाराज के दो और राजा के एक चमर होता है ॥६०॥
10. हे भगवान् ऊपर कहे हुए नामों को आदि लेकर अनेक नाम आप में सार्थकता को धारण कर रहे हैं इसलिए आप जगज्ज्येष्ठ, परमेष्ठी और सनातन कहलाते हैं ॥७२॥

11. पवित्र गुणों का निरूपण करना स्तुति है, प्रसन्न बुद्धि वाला भव्य स्तोता अर्थात् स्तुति करने वाला है, जिनके सब पुरुषार्थ सिद्ध हो चुके हैं ऐसे आप स्तुत्य अर्थात् स्तुति के विषय हैं, और मोक्ष का सुख प्राप्त होना उसका फल है। हे विभो, हे सनातन, इस प्रकार निश्चय कर हृदय से स्तुति करने वाले और फल की इच्छा करने वाले मुझको आप अपनी प्रसन्न दृष्टि से पवित्र कीजिए ॥९१-९२॥
12. कहे जाते हैं, आप पंचपरमेष्ठिरूप हैं, इसलिए पंच ब्रह्ममय ४९ कहलाते हैं, शिव अर्थात् मोक्ष अथवा आनन्दरूप होने से शिव ५० कहे जाते हैं, आप सब जीवों का पालन अथवा समस्त ज्ञान आदि गुणों को पूर्ण करने वाले हैं इसलिए पर ५१ कहलाते हैं, संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं इसलिए परतर ५२ कहलाते हैं, इन्द्रियों के द्वारा आपका आकार नहीं जाना जा सकता अथवा नामकर्म का क्षय हो जाने से आपमें बहुत शीघ्र सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होने वाला है इसलिए आपको सूक्ष्म ५३ कहते हैं, परमपद में स्थित हैं इसलिए परमेष्ठी ५४ कहलाते हैं और सदा एक से ही विद्यमान रहते हैं इसलिए सनातन ५५ कहे जाते हैं ॥९०५॥